विक्रम संवाद

पाक्षिक आलेख सेवा/नि:शुल्क वितरण के लिए

सम्पादक

महाराजा विक्रमादित्य शोध पीठ

1, उदयन मार्ग, उज्जैन-456010

फोन : 0734-2521499, 0755-2660407

Email : mvspujjain@gmail.com
vikramadityashodhpeeth@gmail.com

Web : www.mvspujjain.com

इस अंक में

पृष्ठ क्र. 1-2

हमारी गौरवशाली शिक्षा पद्धति
रितु मिश्र

पृष्ठ क्र. 3-4

प्राचीन विज्ञान और मानव
जयप्रकाश परिहार

पृष्ठ क्र. 5-6

जल धारा का ज्ञान व अल्पवृष्टि की भविष्यवाणी
डॉ. मुकेश कुमार शाह

पृष्ठ क्र. 7

द्विपान्तरों में भारतीय संस्कृति
प्रदीप जैन

पृष्ठ क्र. 8

श्रीराम जन्म पर आकाश में बनी ऐसी तस्वीर
मिथिलेश यादव

हमारी गौरवशाली शिक्षा पद्धति

रितु मिश्र

प्राचीन भारतीय शिक्षा पद्धति में हमें अनौपचारिक तथा औपचारिक दोनों प्रकार के शैक्षणिक केन्द्रों का उल्लेख प्राप्त होता है। औपचारिक शिक्षा मन्दिर, आश्रमों और गुरुकुलों के माध्यम से दी जाती थी। ये ही उच्च शिक्षा के केन्द्र भी थे। जबकि परिवार, पुरोहित, पण्डित, संन्यासी और त्यौहार प्रसंग आदि के माध्यम से अनौपचारिक शिक्षा प्राप्त होती थी। विभिन्न धर्मसूत्रों में इस बात का उल्लेख है कि माता ही बच्चे की श्रेष्ठ गुरु है। कुछ विद्वानों ने पिता को बच्चे के शिक्षक के रुप में स्वीकार किया है। जैसे–जैसे सामाजिक विकास हुआ वैसे–वैसे शैक्षणिक संस्थाएँ स्थापित होने लगी। वैदिक काल में परिषद, शाखा और चरण जैसे संघों की स्थापना हो गयी था, लेकिन व्यवस्थित शिक्षण संस्थाएँ सार्वजनिक स्तर पर बौद्धों द्वारा प्रारम्भ की गई थी।

गुरुकुलों की स्थापना प्रायः वनों, उपवनों तथा ग्रामों या नगरों में की जाती थी। वनों में गुरुकुल बहुत कम होते थे। अधिकतर दार्शनिक आचार्य निर्जन वनों में निवास, अध्ययन तथा चिन्तन पसन्द करते थे। वाल्मीकि, सान्दीपनि, कण्व आदि ऋषियों के आश्रम वनों में ही स्थित थे और इनके यहाँ दर्शन शास्त्रों के साथ–साथ व्याकरण, ज्योतिष तथा नागरिक शास्त्र भी पढ़ाये जाते थे। अधिकांश गुरुकुल गाँवों या नगरों के समीप किसी वाग अथवा वाटिला में बनाये जाते थे। जिससे उन्हें एकान्त एवं पवित्र वातावरण प्राप्त हो सके। इससे दो लाभ थे। एक तो गृहस्थ आचार्यों को सामग्री एकत्रित करने में सुविधा थी, दूसरे ब्रह्मचारियों को भिक्षाटन में अधिक भटकना नहीं पड़ता था। मनु के अनुसार ब्रह्मचारों को गुरु के कुल में, अपनी जाति वालों में तथा कुल बान्धवों के यहाँ से भिक्षा याचना नहीं करनी चाहिए, यदि भिक्षा योग्य दूसरा घर नहीं मिले, तो पूर्व गृहों का त्याग कर भिक्षा याचना करनी चाहिये। इससे स्पष्ट होता है कि गुरुकुल गाँवों के सन्निकट ही होते थे। स्वजातियों से भिक्षा याचना करने में उनके पक्षपात तथा ब्रह्मचारी के गृह की ओर आकर्षण का भय भी रहता था अतएव स्वजातियों से भिक्षा–याचना का पूर्ण निषेध कर दिया गया था। बहुधा राजा तथा सामन्तों का प्रोत्साहन पाकर विद्वान पण्डित उनकी सभाओं की ओर आकर्षित होते थे और अधिकतर उनकी राजधानी में ही बस जाते थे, जिससे वे नगर शिक्षा के केन्द्र बन जाते थे। इनमें तक्षशिला, पाटलिपुत्र, कान्यकुब्ज, मिथिला, धारा, तंजोर आदि प्रसिद्ध हैं। इसी प्रकार तीर्थ स्थानों की ओर भी विद्वान आकृष्ट होते थे। फलतः काशी, कर्नाटक, नासिक आदि शिक्षा के प्रसिद्ध केन्द्र बन गये। कभी–कभी राजा भी अनेक विद्वानों को आमंत्रित करके दान में भूमि आदि देकर तथा जीविका निश्चित करके उन्हें बसा लेते थे। उनके बसने से वहाँ एक नया गाँव बन जाता था। इन गाँवों को 'अग्रहार' कहते थे। इसके अतिरिक्त विभिन्न हिन्दू सम्प्रदायों एवं मठों के आचार्यों के प्रभाव से ईसा की दूसरी शताब्दी के लगभग मठ शिक्षा के महत्वपूर्ण केन्द्र बन गये। इनमें शंकराचार्य, रामानुजाचार्य, मध्वाचार्य आदि के मठ प्रसिद्ध हैं। सार्वजनिक शिक्षण संस्थाएँ सर्वप्रथम बौद्ध विहारों में स्थापित हुई थीं। भगवान बुद्ध ने उपासकों की शिक्षा–दीक्षा पर अत्यधिक बल दिया। इस संस्थाओं में धार्मिक ग्रन्थों का अध्यापन एवं आध्यात्मिक अभ्यास कराया जाता था। अशोक (300 ई.पू.) ने बौद्ध विहारों की विशेष उन्नति करायी। कुछ समय पश्चात् ये विद्या के महान् केन्द्र बन गये। ये वस्तुतः गुरुकुलों के ही समान थे। किन्तु इनमें गुरु किसी एक कुल का प्रतिनिधि न होकर सारे विहार का ही प्रधान होता था। ये धर्म प्रचार की दृष्टि से जनसाधारण के लिए भी सुलभ थे। इनमें नालन्दा विश्वविद्यालय (450 ई.), वल्लभी (700 ई.), विक्रमशिला (800 ई.) प्रमुख शिक्षण संस्थाएँ थीं। इन संस्थाओं का अनुसरण करके हिन्दुओं ने भी मन्दिरों में विद्यालय खोले जो आगे चल

कर मठों के रूप में परिवर्तित हो गये। वेदों में उल्लिखित कुछ मन्त्र इस बात को रेखांकित करते है कि कुमारियों के लिए शिक्षा अपरिहार्य एवं महत्वपूर्ण मानी जाती थी। स्त्रियों को लौकिक एवं आध्यात्मिक दोनों प्रकार की शिक्षाएँ दी जाती थी। सहशिक्षा को बुरा नहीं समझा जाता था। गोभिल गृहसूत्र में कहा गया है कि अशिक्षित पत्नी यज्ञ करने में समर्थ नहीं होती थी। संगीत शिक्षा पर जोर दिया जाता था। इच्छा और योग्यता के अनुसार शिक्षा प्राप्ति के लिए श्रमणक्रमणिका में उल्लिखित प्राचीन परम्परा के अनुसार ऋग्वेद की रचना में अनेक स्त्रियों का योगदान है। ऋग्वेद के दशम मंडल के 39 एवं 40 सूक्त की ऋषिका घोषा, रोमशा, विश्ववारा, इन्द्राणी, शची और अपाला थी। वैदिक युग में स्त्रियाँ यज्ञोपवीत धारण कर वेदाध्ययन एवं सायं–प्रातः होम आदि कर्म करती थी। शतपथ ब्राह्मण में व्रतोपनयन का उल्लेख है। हरित संहिता के अनुसार वैदिक काल में शिक्षा ग्रहण करने वाली दो प्रकार की कन्याएँ होती थी– ब्रह्मवादिनी एवं सद्योवात्। सद्योवात् 15 या 16 वर्ष की उम्र तक, जब तक उनका विवाह नहीं हो जाता था, तब तक अध्ययन करती थीं। इन्हें प्रार्थना एवं यज्ञों के लिए आवश्यक महत्वपूर्ण वैदिक मंत्र पढ़ाये जाते थे तथा संगीत एवं नृत्य की भी शिक्षा दी जाती थी। महावीर और गौतम बुद्ध ने संघ में नारियों के प्रवेश की अनुमति दी थी, ये धर्म और दर्शन के मनन के लिए ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करती थीं। जैन और बौद्ध साहित्य से पता चलता है कि कुछ भिक्षुणियों ने साहित्य के विकास और शिक्षा में अपूर्व योगदान दिया जिसमें अशोक की पुत्री संघमित्रा प्रमुख थी। यहाँ बौद्ध आगमों की महान् शिक्षिकाओं के रूप में उनकी बड़ी ख्याति थी। जैन साहित्य से जयंती नामक महिला का पता चलता है जो धर्म और दर्शन के ज्ञान की प्यास में अविवाहित रही और अंत में भिक्षुणी हो गई। गाथासप्तशती में सात कवयित्रियों की रचनाएँ संग्रहीत है। शीलभट्टारिका अपनी सरल तथा प्रासादयुक्त शैली तथा शब्द और अर्थ के सामंजस्य के लिए प्रसिद्ध थी। देवी लाट प्रदेश की कवियित्री थी। विदर्भ में विजयांका की कीर्ति की समता केवल कालिदास ही कर सकते थे। अवंतीसुन्दरी कवियत्री और टीकाकार दोनों ही थी। कतिपय महिलाओं ने आयुर्वेद पर पांडित्यपूर्ण और प्रामाणिक रचनाएँ की हैं जिनमें रुसा का नाम बड़ा प्रसिद्ध है। आलोच्य काल में नारियों के लिए किसी प्रकार की पाठशाला का पृथक–प्रबन्ध किया गया हो ऐसा वर्णन प्राप्त नहीं होता। बौद्धों ने अपने विहारों में भिक्षुणियों की शिक्षा की व्यवस्था की थी किन्तु कालान्तर में उसके भी उदाहरण प्राप्त नहीं होते। वस्तुतः कन्याओं के लिए पृथक पाठशालाएँ न थीं। जिन कन्याओं को गुरुकुल में अध्ययन करने का अवसर प्राप्त होता था वे पुरुषों के साथ ही अध्ययन करती थीं। उत्तररामचरित में वाल्मीकि के आश्रम में आत्रेयी अध्ययन कर रही थी। भवभूति ने 'मालती माधव' (प्रथमांक) में कामन्दकी के गुरुकुल में अध्ययन करने का वर्णन किया है। किन्तु ये उदाहरण बहुत कम हैं। अधिकतर गुरुपत्नी, गुरुकन्या अथवा गुरु की पुत्रवधू ही गुरुकुल में रहने के कारण अध्ययन का लाभ उठा पाती थीं वस्तुतः शास्त्रों के अनुरोध पर कन्याओं की शिक्षा गृह पर ही होती थी। प्राचीन भारतीय शिक्षा का इतिहास सहस्रों वर्षों की लम्बी अवधि में लिखा गया है। अतः यह अत्यन्त विशाल है। स्मृतियाँ संस्कृत साहित्य में परिवर्तनशील एक विशिष्ट काल की ओर संकेत करती हैं। उनके माध्यम से वैदिक काल से लेकर उनके अपने समय तक की समस्त साहित्यिक रचनाओं की श्रृंखला का पूर्वाभास कराया गया है। अतएव स्मृतिकालीन विद्यार्थियों के अध्ययनार्थ वेदों, ब्राह्मणों, उपनिषदों एवं सूत्रों के काल की समस्त मुख्य रचनाएँ थीं।

ईसा पूर्व पन्द्रह सौ शताब्दी तक अधिकांश वैदिक मन्त्रों के सम्पादन का कार्य पूर्ण हो चुका था। तत्पश्चात् वेदों के अर्थ–बोध के लिए जिन टीकात्मक एवं चर्चात्मक ग्रन्थों का विकास हुआ वे 'ब्राह्मण' ग्रन्थों के नाम से प्रतिष्ठित हुए। इस काल के विद्वानों की प्रतिभा का उपयोग वेदों के स्वरूप की रक्षा एवं अर्थों के स्पष्टीकरण में किया गया, न कि नवीन साहित्यिक–रचनाओं के निरुपण में। फलतः वैदिक यज्ञों से सम्बन्ध अनेक सिद्धान्तों, मतवादों और रीतियों का विवेचन 'ब्राह्मणों' में होने लगा। विद्वानों ने विशेष रूप से अपनी साधना का केन्द्र यज्ञों के कर्मकाण्ड को बनाया। परिणाम स्वरूप कर्मकाण्डों में जटिलता एवं दुरूहता आ गयी। दूसरी ओर वेदों की दार्शनिक प्रवृत्ति का विकास हुआ और उसने 'उपनिषदों' के रूप में पूर्णता प्राप्त की। कालानुक्रम से वेदातिरिक्त साहित्य में भी प्रचुर वृद्धि हुई। फलतः इस सतत् वर्धमान साहित्य में पारंगत होना अकेले एक व्यक्ति की सामर्थ के बाहर हो गया। उस काल में मुद्रण कला का विकास नहीं हुआ था। अतएव वैदिक साहित्य के लोप हो जाने का भय सदा बना रहता था। साहित्य–सुरक्षा के दृष्टिकोण से अध्ययन क्षेत्र को दो भागों में विभाजित कर दिया गया। वैदिक पण्डितों में से कुछ को इस विशाल साहित्य को ज्यों का त्यों कण्ठस्थ करने का कार्य सौंपा गया, जिससे साहित्य का शुद्ध स्वरूप अक्षुण्ण बना रहे तथा अन्य विद्वानों की टीकाओं निरुक्तों और शब्दकोश आदि का अध्ययन करके इनकी व्याख्या करने में अपनी प्रतिभा के प्रदर्शन का अवसर दिया गया।

प्राचीन विज्ञान और मानव

जयप्रकाश परिहार

मानव–सभ्यता के विकासक्रम में दो चीजें आपस में जोड़ने का आविष्कार भी बहुत महत्वपूर्ण है। पत्थर के औजारों में लकड़ी का हत्था लगाने के बाद आदमी का दिमाग इस दिशा में तेजी से चला और उसने अनेक आविष्कार कर डाले–जैसे, सीना–पिरोना, बुनना, बाँधना आदि। मिट्टी का बर्तन बनाने से पहले मनुष्य ने टोकरियाँ बुनने का आविष्कार किया होगा और अलग–अलग चीजों को जोड़ने के प्रयत्न में ही उसने अपने लिए घर बनाना भी सीखा होगा। टोकरियाँ बुनने से उसे कपड़ा बुनने की प्रेरणा मिली होगी। पशुओं और मनुष्यों को एक ही मार्ग पर चलने से बनी पगडंडियों से प्रेरित होकर सड़कों के निर्माण का आविष्कार हुआ। परिवहन के लिए जंगली पशुओं में से अनुकूल पशुओं को पालतू बनाने और खेती, बागवानी, पशुपालन आदि का आविष्कार स्वाभाविक था। आविष्कार की प्रक्रिया यह है कि मानव–समाज की प्रगति हमेशा नई–नई समस्याएँ एवं आवश्यकताएँ पैदा करती रहती हैं और उन समस्याओं को सुलझाने तथा आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए मनुष्य आविष्कारों के द्वारा सामाजिक जीवन को पुनर्व्यवस्थित करता रहता है। नवीन नैतिक धारणाएँ और राजनीतिक विचारधाराएँ तथा सामाजिक संस्थाएँ भी आविष्कार मानी जाती हैं। जिस रूप में आज विज्ञान को हम जानते हैं उसकी ठोस शक्ल 16वीं सदी में तैयार हुई। आधुनिक विज्ञान जादूगर, पुजारी अथवा दार्शनिक के क्रमबद्ध अनुमानों में जितना निहित है, उतना ही दस्तकारों के व्यावहारिक कामकाज और पारम्परिक पेशों में निहित है। आदिम जीवन में जादुई और तकनीकी दोनों ही गतिविधियाँ एक ही उद्देश्य से प्रेरित होती थीं और वे थीं– बाहरी विश्व को समझना, भोजन जुटाना और पीड़ा तथा मृत्यु से बचना। जितनी तकनीकों से आज हम परिचित हैं, उनमें से एक तिहाई पाषाणकालीन मनुष्य से जुड़ी रही हैं, जैसे–शिकार करना, शिकार फँसाना, खाना पकाना, चमड़ा कमाना और उतारना, पत्थरों और लकड़ियों तथा हड्डियों पर किया जानेवाला काम चित्रकला और अंगाई आदि। इस विकास के फल स्वरुप समाज और भाषा के विकास को प्रोत्साहन मिला। 6 हजार से 4 हजार ई.पू के बीच जीवन की उन तमाम कलाओं का एक बड़ा हिस्सा सामने आया, जिसको आज भी इस्तेमाल करते हैं। जैसे–लकड़ी ईंट अथवा पत्थर के स्थायी घर, कमरे, आग जलाने की जगह, स्नानागार और नालियाँ। पहिये वली गाड़ियाँ और जहाज तथा सरलतम यंत्र जैसे नतसमतल, चर्खी लेंथ और पेंच। इन सभी चीजों के लिए यांत्रिकी और भौतिकी की भारी समझ जरूरी थी। ई.पू. 4 हजार के आसपास व्यापारियों और उनके मुनीमों के लिए अंकगणित और बीजगणित का पर्याप्त ज्ञान आवश्यक था। खगोलशास्त्र का व्यावहारिक औचित्य कृषि के बुनियादी पेशे के साथ तिथि चक्र के निर्माण से जुड़ा था।

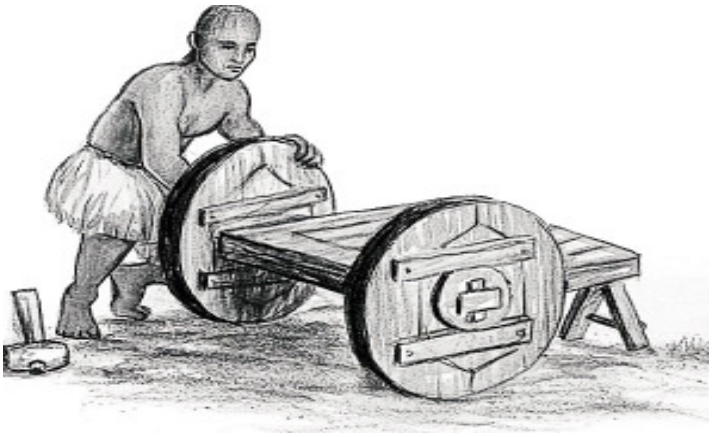

व्यापारी और नाविक भी चूँकि सितारों की मदद से ही यात्राएँ करते थे, लिहाजा उनका भी इनसे जुड़ाव बनता था। यह न सिर्फ बहुत कठिन था बल्कि इसका जुड़ाव आसमानी चीजों से भी था जो उन देवताओं के दायरे में आती थी जो मनुष्य की नियति को नियंत्रित करते थे। यही वजह थी कि पुजारियों पर दैवी इच्छाओं की व्याख्या की जिम्मेदारी आ पड़ती थी। खगोलशास्त्र ज्योतिष पर अवलंबित था आकाशी गतिविधियों की जानकारी रखने वाला ज्योतिष का विद्वान माना जाता था। खगोलशास्त्र ऐसा क्षेत्र था जिसमें बुनियादी गणित बाहरी विश्व की घटनाओं का लेखा जोखा मुहैया करा सकता था। कारीगर के कामकाज में जो विज्ञान इस्तेमाल होता जटिल था कि उसका बौद्धिक विश्लेषण उस समय सम्भव नहीं था किन्तु आकाशीय गतियाँ इतनी सटीक ज्यामितीय नियमितता के साथ होती थीं कि उन्हें एक क्रम देना सम्भव था। इसके लिए प्रेक्षण और गणना की जरूरत थी। यह काम ज्योतिष करते थे वे लंबे समय तक अलग–अलग जगहों से प्रेक्षण किया करते थे। एक पारम्परिक और जादुई पहलू से विज्ञान को अलग करने में धीरे–धीरे सफलता मिलती गई। किन्तु बाद में चलकर पुनः ज्योतिष का प्रधान अंग फलित ज्योतिष को बना दिया गया। गणित और ज्योतिष में आर्यभट्ट, वराहमिहिर और ब्रह्मगुप्त तथा चिकित्सा एवं रसायनशास्त्र में नागार्जुन, चरक, दृढ़बल और बाणभट्ट का व्यक्तित्व वैज्ञानिक प्रतिभा के उज्ज्वल हरण है। ई.पू. सातवीं शताब्दी में ही तक्षशिला प्रसिद्ध चिकित्सा केन्द्र था और फाहियान ने पाटलिपुत्र में चिकित्सालय की चर्चा की है। सानियों की मुद्रा डालने की विधि ने कुषाणकालीन भारतीय मुद्रा–शिल्प को विशेष रूप से प्रभावित किया। यूनानी यांत्रिक ज्ञान कुषाणकाल में भारत और इस समय यहाँ घनचक्की का

आविष्कार हुआ। एक शैव ज्योतिष द्वारा संभवतः 12वीं शताब्दी में गणित–ग्रन्थ की रचना की गई। इस ग्रन्थ की पांडुलिपि 1881 में पेशावर से 50 मील दूर मदर्शन के पास नामक स्थान पर मिली थी और इसलिए इसे बख्शाली पांडुलिपि कहते हैं। भोजपत्रों पर एक तरह की असम्बद्ध संस्कृत भाषा में रचित और शारदा लिपि में लिखित इस ग्रन्थ का आधा अंश ही सुरक्षित रहा। शारदा लिपि मूल ब्राह्मी लिपि से निकली एक प्राचीन लिपि है। यह पांडुलिपि ऑक्सफोर्ड के प्रसिद्ध बौलियन पुस्तकालय में सुरक्षित है। इस ग्रन्थ में गणित, दशमलव लेखन और शून्य आदि का वर्णन है। आदिम युग में खाद्य की खोज के लिए जंगलों में विचरण करते समय वनस्पति तथा प्राणी जगत् से मनुष्य का जो प्रथम परिचय हुआ, उसी सूत्र से वनस्पति विज्ञान, जीव विज्ञान, प्राणी विज्ञान, चिकित्सा तथा शल्य विज्ञान की उत्पत्ति हुई। मस्तक के ऊपर चन्द्र–सूर्य उद्भासित, नक्षत्रमय महाकाश और पैरों तले कठिन, नीरस, समाहीन पृथ्वी से प्रथम परिचय के साथ ही ज्योतिष, भौतिकी, रसायन, भू–विज्ञान आदि प्राकृतिक विज्ञानों का सूत्रपात हुआ। यही कारण है कि विज्ञान का इतिहास वास्तव में मानव विकास के इतिहास का खुदाई से प्राप्त सामग्रियों के अध्ययन से पता चलता है कि सिन्धु घाटी सभ्यता के पूर्व के जमाने में लोग प्राकृतिक प्रकोप से काफी पीड़ित थे। भोजन प्राप्त करने के लिए उन्हें प्रतिदिन असीमित कठिनाइयों का सामना करना पड़ता था। कठिनाइयों से यथासम्भव बचते हुए उन्होंने जीवित रहने एवं स्वस्थ रहने का यथासम्भव प्रयास किया, किन्तु सफलता शायद ही मिल पाती थी। भोजन की तलाश ने उन्हें गतिशील बनाया। असफलता मिलने के फलस्वरूप अदृश्य शक्तियों के प्रति उनके मन में डर पैदा हुआ होगा। इस डर से मुक्ति पाने के लिए उन्होंने अदृश्य शक्तियों के क्रोध को शान्त करने का प्रयास किया। इसके लिए प्रार्थना की जाने लगी। प्रार्थना–शैली जादू–टोने से प्रभावित होने लगी। इन अबूझ पहेलियों के परिणामस्वरूप उन्हें भोजन, जीवन और स्वास्थ्य की प्राप्ति शायद ही हो पाती थी। इस प्रक्रिया के साथ–साथ बेहतर भविष्य के लिए एक सिलसिला और प्रारम्भ हुआ और वह था– उपलब्ध समस्याओं से टकराने की भावना। इस भावना ने कुछ लोगों को भीतर से सुदृढ़ किया और उन्होंने प्रकृति को चुनौती देते हुए समस्याओं का हल ढूँढ़ना शुरू किया। इस प्रक्रिया के दौरान जाने–अनजाने में विज्ञान और प्रौद्योगिकी की तस्वीर बनने लगी। वैज्ञानिक सफलता का आधार उपकरण है। सभ्यता का मार्ग उपकरणों ने प्रशस्त किया। अन्धविश्वास के शिकंजे से मानव को उपकरणों ने मुक्त कराया। वर्तमान युग विज्ञान का युग है। यह हमारे समाज, उत्पादन, रहन–सहन एव विचारधारा को प्रत्येक पग पर प्रभावित करता है। आज का विकसित और समृद्ध समाज विज्ञान और प्रौद्योगिकी के विकास में विगत हजारों वर्षों में किए गए प्रयत्नों का परिणाम है। वैज्ञानिक अवधारणाएँ किसी व्यक्ति अथवा संस्कृति विशेष द्वारा विकसित न होकर सामूहिक प्रयत्नों का प्रतिफल होती हैं। विज्ञान का विकास कभी रुकता नहीं है। वैज्ञानिक उन्नति किसी भी समाज के मानसिक स्तर को प्रतिबिम्बित करती है। मनुष्य के आवश्यकतानुसार कुछ आविष्कार अनजाने में होते गए, जिनमें नाव, पहिया, गाड़ी आदि प्रमुख हैं। लेखन–पद्धति का आविष्कार हुआ। अपने पालतू पशुओं से सम्बद्ध आँकड़ों का ज्ञान रखने के लिए मानव ने सर्वप्रथम लिपि का प्रयोग प्रारम्भ किया। हाथ–पैर की दस–दस अंगुलियों ने मनुष्य की गणनाबुद्धि का विकास किया। सिन्धु नगरों के कुछ मृद्भांडों में कोयले के रंग की एक वस्तु प्राप्त हुई है, जिसे शिलाजीत बताया गया है। एक प्रकार से समुद्री मछली की हड्डियाँ चबाने से भूख लगती थी तथा आँख, कान, नाक, गले आदि के रोगों में इसका प्रयोग किया जाता था। भारत में परिपक्व रूप में वैज्ञानिक गतिविधियों का सिलसिला सिन्धु सभ्यता से प्रारम्भ हो जाता है। कृषि का आविष्कार विश्व में नव–पाषाणकाल के दौरान हुआ। सिन्धुकाल में ट्रिटिकम बलोर, ट्रिटिकम स्फेरोकोकम एवं ट्रिटिकम कॉम्पैक्टम जैसी गेहूँ की उत्कृष्ट जातियों की पैदावार होने लगी थी। पंजाब में गेहूँ की यही जातियाँ आज भी पैदा की जाती हैं। हल नामक उपकरण के अप्रत्यक्ष प्रमाण सिन्धु नगरों से मिले हैं। अनाज रखने के लिए मृद्भांड का प्रयोग प्रारम्भ हुआ। रंगीन और चित्रित मिट्टी के जो पात्र मिले हैं उन पर ज्यामितिक नमूनों की प्रधानता है या फिर पशुओं के चित्रों की प्रधानता है। इसे आग में पकाने के लिए कम से कम 600 डिग्री ताप की आवश्यकता पड़ती थी और इस विधि की जानकारी कुम्हार को थी। मिट्टी के प्रकारों और किस प्रकार की मिट्टी से कौन–सी वस्तु बनाई जा सकती थी– इसकी भी जानकारी कुम्हार को रहती थी। वह अपने जमाने का प्रसिद्ध वैज्ञानिक था। मोहनजोदड़ो एवं हड़प्पा की नगर निर्माण व्यवस्था विकास की द्योतक हैं। यहाँ के स्नानागार में जल का रिसाव रोकने के लिए एस्फाल्ट का प्रयोग किया गया है जो उत्कृष्ट वैज्ञानिकता का प्रमाण है। हड़प्पा संस्कृति की उत्कृष्ट नगर निर्माण व्यवस्था में प्रयुक्त एक नाप की ईंटों, सीधी सड़कों, 90 डिग्री पर निर्मित आयताकार दीवारों, वृत्तीय कुओं, यहाँ से प्राप्त पात्रों पर उत्कीर्ण ज्यामितीय संरचनाओं तथा परियों को देखते हुए यह स्पष्ट होता है कि समिति के प्रायोगिक अध्ययन के संदर्भ में भारतीय ज्ञान किसी से पीछे नहीं था। विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी से सम्बद्ध प्राचीन साहित्य एवं पुरातात्विक सामग्रियों से जो तथ्य उभरकर आते हैं उनसे पता चलता है कि सिन्धु सभ्यता के समय नगर–योजना अतिविकसित अवस्था में थी। उत्तर–वैदिककाल से औषध विज्ञान में नवीन चरण की शुरुआत हुई। कृषि विज्ञान में नवीन तथ्य ई.पू. छठी शताब्दी से पाए जाने लगे। नगरीकरण के द्वितीय चरण की शुरुआत में विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी की भूमिका सर्वोत्तम रही। यह सिलसिला कुषाणकाल तक जारी रहा। पुरातात्त्विक सामग्रियाँ, प्राकृत एवं पाली साहित्य तथा अर्थशास्त्र इस अवधारणा के ज्वलंत प्रमाण हैं। गुप्तकाल से विज्ञान और प्रौद्योगिक को आर्थिक विकास में नजरअन्दाज करने के लक्षण दिखाई देने लगते हैं।

जल–धारा का ज्ञान व अल्पवृष्टि की भविष्यवाणी

डॉ. मुकेश कुमार शाह

भारतीय इतिहास में अन्तःभूमि जलधारा का सर्वेक्षण एक प्राचीन कला हैं। सम्भवतः इसका विकास छठी शताब्दी ई.पू. में हुआ था। वण्णुपथ जातक में इससे सम्बन्धित बोधिसत्व की कथा का वर्णन भी हमें मिलता है। वराहमिहिर की बृहत्संहिता के अध्याय 53 में इसका विस्तारपूर्वक वर्णन मिलता है। इस कला को वराहमिहिर ने 'दृकार्गल' अथवा 'उदकार्गल' कहा है, जिसका अर्थ हैं धरती की ऊपरी परत के नीचे की मिट्टी (उदक) में लकड़ी की छड़ (अर्गल) के माध्यम से जल की खोज करना।

वर्तमान समय में भी देश के अनेक भागों में इस कला के माध्यम से भू–गर्त में स्थित जल की खोज की जाती है। वस्तुतः बृहत्संहिता में वर्णित यह कला जैसा कि उपर्युक्त वर्णित हैं कि अत्यन्त प्राचीन हैं। जातकों के अतिरिक्त मनु, सारस्वत, भट्टोत्पल इत्यादि ने भी इस विषय पर लिखा है। बृहत्संहिता में इस कला को पुनःजीवित करने का प्रयास हुआ है। इस कला को प्राचीन भारत में हाइड्रोलॉजिकल ज्ञान के रूप में ही किया जा रहा है कि यद्यपि जो वर्षा होती है, वह वास्तविक रूप में एक ही रंग तथा स्वाद की होती है। किन्तु भिन्न–भिन्न मिट्टी में प्रवेश करने के कारण उसका रंग व स्वाद भी भिन्न हो जाता है। यह जल मिट्टी के भीतर ऊपरी अथवा गहरी परतों में जमा होकर बहता रहता है। यदि जलरहित देश में वेदमजनूँ का वृक्ष हो तो उससे तीन हाथ पश्चिम दिशा में डेढ़ पुरुष नीचे जल कहना चाहिए (जल मिलता है)। भुजा ऊपर की तरफ खड़ी करने से पुरुष की जितनी लम्बाई हो वह एक पुरुष प्रमाण (120 अंगुल) यहाँ पर ग्रहण करना चाहिए। इस खात में पश्चिमा शिरा बहती है। यहाँ पर खोदने के समय कुछ चिह्न निकलते आधा पुरुष प्रमाण तुल्य खोदने पर पाण्डु वर्ण का मेंढ़क हैं, उसके नीचे पीली मिट्टी, उसके नीचे पत्थर और पत्थर के नीचे जल मिलता है।

यदि जलरहित देश में जामुन का वृक्ष हो तो उससे तीन हाथ उत्तर दिशा में दो पुरुष तुल्य नीचे पूर्व शिरा होती है। यहाँ पर भी खोदने के समय में कुछ चिह्न निकलते हैं, जैसे एक पुरुष प्रमाण तुल्य नीचे लोहे के समान गंध वाली मिट्टी, उसके नीचे कुछ सफेद मिट्टी और उसके नीचे मेंढक निकलता है। जामुन वृक्ष से पूर्व तरफ समीप में ही बाँबी (चींटी की) तो उससे तीन हाथ दक्षिण दिशा में दो पुरुष नीचे मधुर जल मिलता है। आधा पुरुष प्रमाण नीचे मछली, उसके नीचे कबूतर के समान रंग वाला पत्थर निकलता हैं तथा इस खात में नील वर्ण की मिट्टी होती है और चिरकाल तक अधिक जल होता है। इसी प्रकार जलरहित देश में गूलर का वृक्ष हो, अर्जुन वृक्ष से तीन हाथ उत्तर दिशा में बाँबी हो, वल्मीकयुक्त निर्गुण्डी (सिन्दुवार वृक्ष) हो, बेर के वृक्ष से पूर्व वल्मीक हो, जहाँ पर कोविदारक वृक्ष के ईशान कोण में कुशायुक्त वल्मीक हो तो सप्तवर्ण वृक्ष और

वल्मीक के मध्य साढ़े पाँच पुरुष नीचे अधिक जल होता हैं। यदि वल्मीक से युक्त सप्तवर्ण वृक्ष हो, किसी वृक्ष के मूल मेंढ़क दिखाई दे, करंजक वृक्ष के दक्षिण दिशा में वल्मीक दिखाई दे, महुए के वृक्ष से उत्तर वल्मीक हो, तिलक (तालमखाना) के वृक्ष से दक्षिण कशा और दूब से युक्त स्निग्ध वल्मीक हो, कदम्ब वृक्ष से पश्चिम में वल्मीक हो, यदि वल्मीक से युक्त ताड़ (ताल) या नारियल का वृक्ष हो, कपित्थ (कैंथ) के वृक्ष से दक्षिण वल्मीक हो। अश्मन्तक वृक्ष के बाँयी तरफ बेर का वृक्ष या वल्मीक हो, हरिद्र (हलदुआ) वृक्ष की बाँयी ओर वल्मीक हो तो अनेनानेक पत्थर, मिट्टी, सर्प, मेंढ़क इत्यादि के साथ अत्यधिक जल मिलता है। जिस जल रहित देश में बहुत जल वाले देश के चिह्न दिखाई दे तथा जहाँ पर वीरण (गाँडर) और दूब अधिक कोमल हो वहाँ एक पुरुष नीचे जल होता है। तृण रहित प्रदेश में कोई एक स्थान तृणयुक्त दिखाई दे अथवा तृणयुक्त प्रदेश में कोई एक स्थान तृणरहित दिखाई दे तो उस स्थान में चार पुरुष नीचे शिरा (जल शिरा) होती है। जहाँ काँटे वाले वृक्षों में एक बिना काँटे वाला अथवा बिना काँटे वाले वृक्षों में एक काँटे वाला वृक्ष हो वहाँ उस वृक्ष से तीन हाथ पर पश्चिम दिशा में एक तिहाई युक्त तीन पुरुष नीचे जल या धन होता है। जहाँ पाँव से ताड़न करने से गंभीर शब्द हो वहाँ साढ़े तीन पुरुष नीचे जल और उत्तरा शिरा होती है।

इसी प्रकार वृक्ष की शाखा से भी जल ज्ञान की चर्चा

बृहत्संहिता में की गयी हैं। यदि किसी वृक्ष की एक शाखा नीचे की ओर झुकी हो या पीली पड़ गयी हो तो उस शाखा के नीचे तीन पुरुष समान खोदने से जल मिलता है। फल पुष्पों से भी शिरा ज्ञान का वैज्ञानिक अध्ययन करते हुए बताया गया हैं कि जिस वृक्ष के फल पुष्पों के विकार पैदा हो उस वृक्ष से तीन हाथ पर पूर्व दिशा में चार पुरुष नीचे शिरा होती हैं तथा नीचे पत्थर और पीली भूमि मिलती है। इसी प्रकार वाष्प, धूम (धुआँ), धान्य तथा मरूदेश में भी जल शिरा का सर्वेक्षण करने की वैज्ञानिक विधि क्रमशः वर्णित करते हुए कहा गया है कि जिस स्थान से भाप या धुआँ निकलता हुआ दिखाई दे, वहाँ दो पुरुष नीचे बहुत जल बहने वाली शिरा होनी चाहिए। जिस खेत में धान्य उत्पन्न होकर नष्ट हो जाये, बहुत निर्मल धान्य हो या उत्पन्न होकर पीला पड़ जाय वहाँ दो पुरुष नीचे बहुत जल बहने वाली शिरा होती है। मरुदेश में जिस तरह ऊँट की गर्दन की तरह भूमि में ऊँची–नीची शिरा होती है, वहाँ भी जलराशि मिल जाती है। जहाँ तृण, वृक्ष, वल्मीक और गुल्मों से रहित एक वर्ण की भूमि हो तथा उस भूमि में कहीं एक जगह विकार दिखाई दे तो उस विकार युक्त भूमि के पाँच पुरुष नीचे जल कहना चाहिए। जहाँ स्निग्ध, नीची, रेतदार और पाँव के रखने से शब्दयुक्त भूमि हो वहाँ साढ़े चार या पाँच जल मिलता है। जहाँ सूर्य, अग्नि, भस्म, ऊँट या गदहे के रंग की या लाल रंग की भूमि में लाल अंकुर वाला, दूध वाला करीश वृक्ष हो या लाल वर्ण की भूमि हो वहाँ पत्थर के नीचे जल होता है। कबूतर, शहद, घृत या सोमलता के समान रंग वाला पत्थर जहाँ हो वहाँ कभी नष्ट न होने वाला जल शीघ्र निकलता है।

इस प्रकार वराहमिहिर ने अपने पूर्व के विद्वानों के ज्ञान के आधार पर वैज्ञानिक तकनीकी के युक्त दृकार्गलाध्याय का विवेचन किया है, जिसके माध्यम से विभिन्न क्षेत्रों में जलराशि का ज्ञान किया जा सकता है। बृहत्संहिता में वर्णित अतिवृष्टि, अल्पवृष्टि की भविष्यवाणी भारत जैसे देश में कृषि मानसून पर निर्भर करती है। चूँकि संसार का प्राण अन्न हैं और अन्न वर्षा ऋतु के अधीन है। अतः वर्षा ऋतु की भविष्यवाणी प्राचीनकाल से ही भारत में प्रचलित रही हैं। वराहमिहिर ने बृहत्संहिता में गर्ग, पराशर, कश्यप, वज्र, बादरायण, सिद्धसेन, देवल आदि मुनियों के द्वारा निबद्ध मेघों के गर्भलक्षण और मेघमाला के आधार पर अपने ग्रन्थ में वर्षाकाल का वैज्ञानिक लक्षण बताया है। चन्द्रमा के जिस नक्षत्र में स्थित होने से गर्भ स्थिति होती है, चन्द्र के वश 195वें दिन में उसका प्रसव होता हैं। यदि गर्भ शुक्ल पक्ष में हो तो कृष्ण में, कृष्ण पक्ष में हो तो शुक्ल पक्ष में, दिन में हो तो रात्रि में, रात्रि में हो तो दिन में पूर्व सन्ध्या में हो तो पश्चिम सन्ध्या में और पश्चिम सन्ध्या में हो तो पूर्व सन्ध्या में प्रसव (वृष्टि) होता है।

मार्गशीर्ष शुक्ल और पौश शुक्ल में स्थित गर्भ मन्द फल अर्थात् अल्प वृष्टि देने वाला होता है। यहाँ पर चौत्र शुक्ल प्रतिपदा से मास ग्रहण करना चाहिए। यदि पौष कृष्ण पक्ष में गर्भ हो तो श्रावण शुक्ल पक्ष में, माघ शुक्ल में गर्भ हो तो श्रावण कृष्ण में, माघ कृष्ण में गर्भ हो तो भाद्र शुक्ल में, फाल्गुन कृष्ण में गर्भ हो तो आश्विन शुक्ल में, चौत्र शुक्ल में गर्भ हो तो आश्विन कृष्ण में और चौत्र कृष्ण में गर्भ हो तो कार्तिक शुक्ल में प्रसव अर्थात् वृष्टि होती है। यदि गर्भकाल में मेघ पूर्व दिशा में हो तो प्रसव काल पश्चिम दिशा में पश्चिम दिशा में गर्भकाल हो तो पूर्व दिशा में दक्षिण दिशा में हो तो इसकी विपरीत दिशा में उत्तर दिशा में हो तो इसके विपरीत दिशा में आग्नेय कोण में हो तो वायव्य कोण में और इसका विपरीत, ईशान कोण में हो तो नैऋत्य कोण में और इसके विपरीत कोण में मेघ होता है।

इसी प्रकार गर्भकालिक मेघों के लक्षण का वर्गीकरण करते हुए। बताया गया है कि मोती या चाँदी के समान श्वेत अथवा तमाल वृक्ष, नील कमल या अंजन के समान अति कृष्ण अथवा जलचर जन्तु के समान कान्ति वाले गर्भकालिक मेघ हो तो वह बहुत वृष्टि देने वाले होते हैं। अति भयंकर सूर्य किरण से तापित, अल्प वायु से युक्त गर्भकालिक मेघ 195वें दिन (प्रसवकाल) में रूष्ट की तरह होकर धाराप्रवाह अतिवृष्टि करते हैं। गर्भनाश का उल्लेख करते हुए बताया गया हैं कि यदि गर्भकाल में उल्कापात, विद्युत, धूलि की वृष्टि, दिशाओं में जलन, भूकम्प, गन्धर्व नगर, नाभस, कीलक आदि केतुओं का दर्शन, गृहयुद्ध, निर्घात (शब्द) रूधिर आदि (रूधिर, मांस, वसा, घृत, तैल आदि) की विकारयुक्त वृष्टि, परिघ, इन्द्रधनु, राहु, चन्द्रग्रहण या सूर्यग्रहण का दर्शन गर्भ के नाश करने वाले होते हैं। गर्भकालिक नक्षत्र वश अधिक वृष्टि के योग की भविष्यवाणी करते हुए बताया गया है कि सब ऋतुओं में पूर्वभाद्रपदा, उत्तरभाद्रपदा, उत्तराषाढ़ा, पूर्वाषाढ़ा, रोहिणी इन पाँच नक्षत्रों में बढ़ा हुआ गर्भ प्रसवकाल में अधिक वृष्टि करता है।

शतभिषा, अश्लेशा, आर्द्रा, स्वाति या मधा नक्षत्र में उत्पन्न गर्भ बहुत दिन तक पुष्ट रहता हैं तथा उक्त पाँच नक्षत्रों में बढ़े हुए गर्भ जितने दिन त्रिविध उत्पादों (दिव्य, आन्तरिक और भौम) से हत हो उतने दिन तक वर्षा नहीं होती। उक्त पाँच नक्षत्रों में से किसी एक नक्षत्र में मार्गशीर्ष में गर्भ की वृद्धि हो तो 8 दिन, पौष में 6 दिन, माघ में 16 दिन, फाल्गुन में 20 दिन, चौत में 20 दिन और वैशाख में 3 दिन तक वृष्टि होती है। वक्ष्यमाण पाँच निमित्तों अर्थात् वायु, जल, विद्युत, मेघ शब्द तथा मेघों से युक्त गर्भ प्रसवकाल से युक्त गर्भ 50 योजन में 100 यौजन तक बरसता है। चार निमित्तों तक, तीन निमित्तों से युक्त गर्भ 25 योजन तक, दो निमित्तों से युक्त गर्भ 12 योजन तक और एक निमित्त से पाँच योजन तक, प्रसवकाल में बरसता है। यदि गर्भकालिक नक्षत्र पापग्रह से युक्त हो तो उपल, वज्र और मछली से युक्त वृष्टि होती है। यदि वहाँ पर (गर्भकालिक नक्षत्र में) चन्द्र या रवि स्थित होकर शुभग्रह (बुध, बृहस्पति और शुक्र) से युत या दृष्ट हो तो बहुत वर्षा देने वाला गर्भ होता है। इस प्रकार वराहमिहिर ने अपने पूर्व के आचार्यों से प्रेरित होकर मेघ गर्भलक्षणों का विस्तृत तथा वैज्ञानिक विवेचन हमारे सम्मुख प्रस्तुत किया है, जिसके आधार पर हम ग्रह–नक्षत्रों के ज्ञान से वर्षा चक्र का अध्ययन कर सकते हैं।

द्विपान्तरों में भारतीय संस्कृति

प्रदीप जैन

विश्व के कई देशों में भारतीय संस्कृति, कला और साहित्य का प्रसार हिंदू धर्म और बौद्ध धर्म के माध्यम से ही हुआ। चीन और कम्बोडिया का नाम, जिन्हें भारतीय साहित्य में चम्पा और कम्बुज कहा चम्पा से प्राप्त प्राचीन अभिलेखों तथा प्रशस्तियों में वहाँ का नाम 'अत्तम' लिखा हुआ मिलता है। प्राचीन काल में वह बृहत्तर भारत का अंग रहा है। चीनी इतिहासकारों के अनुसार चम्पा में प्रथम शती ई. के लगभग हिन्दू विचारधारा तथा हिन्दूधर्म का प्रवेश हो चुका था। ऐसी जनश्रुति है कि दक्षिण भारत से कौण्डिन्य नामक एक ब्राह्मण ने चम्पा में अपना राज्य स्थापित किया था। वहाँ लगभग 200 ई. में श्रीमान् तथा दक्षिणवर्मन् आदि शासकों ने भारतीय उपनिवेश स्थापित कर लिये थे। 380 ई. में वहाँ चन्द्रवर्मन् नामक राजा राज्य करता था, जिसके सम्बन्ध में कहा गया है कि वह हिन्दू धर्म का परम अनुरागी और वेदों का प्रकाण्ड विद्वान् था। भारतीय शासकों की परम्परा किस रूप में आगे बढ़ी, इसका कोई प्रामाणिक आधार उपलब्ध नहीं है। जिन परवर्ती भारतीय शासकों के अभिलेख उपलब्ध हैं। उनमें चन्द्रवर्मन के अतिरिक्त मदनवर्मन् प्रथम का नाम उल्लेखनीय है। चम्पा में प्राप्त अभिलेख ब्राह्मी तथा पल्लव लिपि में हैं। उनकी भाषा संस्कृत है और वे लगभग तीसरी शती ई. के हैं। इन अभिलेखों से प्रतीत होता है कि चम्पा में संस्कृत का पर्याप्त प्रचार–प्रसार था। वहाँ की राजभाषा किसी समय संस्कृत ही थी। चम्पा की वर्तमान सामाजिक, सांस्कृतिक और साहित्यिक वस्तुस्थिति से ज्ञात होता है कि वहाँ भारतीयता का आज भी गहन प्रभाव है। भारत की ही भाँति वहाँ के साहित्य पर भी संस्कृत का प्रभाव है। वहाँ के साहित्य के लिए 'रामायण' तथा 'महाभारत' उपजीव्य ग्रन्थ रहे हैं और इन दोनों ग्रन्थों की कथाओं के आधार पर वहाँ के साहित्य में कथा, काव्य तथा नाटक आदि अनेक विषयों की कृतियों का निर्माण हुआ है। चम्पा की धार्मिक परम्पराओं पर भी भारत के पौराणिक भागवत धर्म का प्रभाव रहा है। वहाँ से प्राप्त अभिलेखों में ब्रह्मा, विष्णु और महेश इस त्रिदेव की विशेष चर्चा हुई है। ब्राह्मण धर्म के बाद बौद्ध धर्म का प्रवेश हुआ और उसके फलस्वरूप वहाँ के धर्म तथा दर्शन विषयक साहित्य पर पालि के बौद्ध–साहित्य का प्रभाव पड़ा इस प्रकार चम्पा में ब्राह्मण और बौद्ध–साहित्य तथा धर्म का अपूर्व संयोग देखन को मिलता है। मध्य एशिया के अनेक देशों पर ख्मेर जाति के लोगों का व्यापक प्रभाव रहा है। ऐसा प्रतीत होता है कि वे ब्राह्मण धर्म तथा वैदिक संस्कृति के थे। ख्मेर देश के श्रीक्षेत्र और ईशानपुर के बीच भारतीय उपनिवेश के रूप में एक नगर का उल्लेख हुआ है। इस नगर में विभिन्न युगों से सम्बद्ध अनेक मूर्तियाँ प्राप्त हुई हैं, जिनका समय विद्वानों ने 5वीं से 10वीं शती ई. के बीच निर्धारित किया है। इन मूर्तियों पर गुप्तकला का स्पष्ट प्रभाव है। इनसे स्पष्ट है कि ख्मेर में भी भारतीय उपनिवेश की स्थापना हो चुकी थी। इस उपनिवेश का इसलिए विशेष महत्व है कि वहाँ से भारतीय संस्कृति, धर्म और कला का प्रभाव फुनान तथा कम्बोडिया में एक साथ व्याप्त हुआ। मध्य स्याम में भी उनके शासनकाल में ब्राह्मण धर्म से प्रभावित मन्दिर स्थापित हुए। कम्बोडिया पर भी ख्मेर राजाओं का शासन रहा। वहाँ का ख्मेर राजा जयवर्मन् महायान सम्प्रदाय का अनुयायी था। उसकी राजधानी बेयोन थी। उसने बौद्ध धर्म के अनेक मठ बनवाये। उसके द्वारा निर्मित मठों की विशेषता यह थी कि उन पर बोधिसत्व अवलोकितेश्वर के चार मुख बने हुए हैं। ये चार मुख सम्भवतः बुद्ध के शान्ति, करुणा, दया और सर्वहित के आदर्शों के प्रतीक थे। इस धर्मपरायण शासक ने परम्परागत शैव और वैष्णव धर्मों को भी विकसित होने की स्वतन्त्रता प्रदान की। भारतीय संस्कृति और कला अनुयायी ख्मेर स्थित अंगकोर थोम कम्बोडिया की प्राचीन राजधानी थी। अंगकोर थोम (यशोधरपुर या नगरधाम) में 12वीं शती के आरम्भ में अनेक भव्य मन्दिरों का निर्माण हुआ। वहाँ का विशाल बेयोन मन्दिर ब्राह्मण और बौद्ध आदर्शों का समन्वित प्रतीक है, जिसमें लगभग तीन सौ वर्षों के शासकों की कलाप्रियता का एक साथ दर्शन होता है। उसके निर्माण में यशोवर्मन् सप्तम (1181–1201 ई.) नामक तीन शासकों की कीर्ति विशेष रूप से सुरक्षित है। इस मन्दिर के मुख्य स्तम्भ पर चतुरानन शिव की विशाल ध्यानस्थ मूर्ति स्थापित है, जिसमें निर्माण और विनाश के सनातन भाव, बड़ी सुन्दरता से अभिव्यंजित किये गये हैं।

पुस्तक चर्चा/मिथिलेश यादव

श्रीराम जन्म पर आकाश में बनी थी ऐसी तस्वीर

ईश्वर ने सृष्टि में जब से मानव की रचना की है तभी से मानव ने अपनी जिज्ञासु प्रवृत्ति के बल पर प्रकृति और प्राणियों के बारे में जानने का प्रयत्न किया है और इस ज्ञान के आधार पर उसने अपने आप को वन्य प्राणियों और विषम परिस्थितियों से सुरक्षित रखा है। भाषा के उदय के साथ अपने ज्ञान और अनुभव को मानव ने श्रुति–स्मृति के माध्यम से अगली पीढ़ियों तक पहुँचाया है। समय के साथ–साथ बुद्धि की क्रियाशीलता बढ़ी और विचारों की अभिव्यक्ति के लिए विभिन्न विधाओं का आविष्कार हुआ। भारत के अनेक ऋषियों ने भी इन विधाओं में श्रेष्ठता प्राप्त कर ली थी। भारतीय मनीषियों ने अपने ज्ञान और अनुभव के आधार पर अनेक कृतियों का सृजन किया। वेद, पुराण, उपनिषद्, काव्य और महाकाव्य, भारतीय मनीषियों के ज्ञान और अनुभव की ऐसी ही प्राचीनतम् अभिव्यक्ति हैं। डॉ. सरोज बाला और दिनेशचंद्र अग्रवाल रचित पुस्तक 'रामकथा सितारों से सुनिए' में लेखकों ने उस समय आकाश में ग्रहों एवं नक्षत्रों की स्थिति एवं बहुत से स्थलों का भौगोलिक चित्रण एवं ऋतुओं वर्णन किया है, तो दूसरी ओर राजाओं की वंशावलियों के बारे में विस्तृत जानकारी दी है। वैज्ञानिक विधि का उपयोग करके वाल्मीकि रामायण में वर्णित घटनाओं का समय ज्ञात करना असंभव नहीं है। आधुनिक तारामंडल सॉफ्टवेयर का उपयोग करके खगोलीय गणनाओं ने यह सिद्ध किया है कि वाल्मीकि रामायण में वर्णित घटनाएँ वास्तव में 7,000 वर्ष पूर्व उसी क्रम में घटित हुई थीं जैसा कि रामायण में वर्णित हैं। रामसेतु उसी स्थान पर जलमग्न पाया गया है जिस स्थान का वर्णन रामायण में किया गया है। जलवायु परिवर्तन पर नासा के अनुमान के अनुसार पिछले 7,000 वर्षों के दौरान समुद्र के स्तर में वृद्धि लगभग 2.8 मीटर हुई है। वर्तमान में रामसेतु के अवशेष समुद्र सतह से लगभग इसी गहराई पर जलमग्न पाए गए हैं।

इस पुस्तक में रामायण में वर्णित घटनाओं का सटीक तथा अनुक्रमिक तिथि–निर्धारण किया गया है और यह निष्कर्ष निकाला गया है। ऐसा करने के लिए अपनाई गई विधि यथाक्रम वर्णन इस प्रकार है– प्लैनेटेरियम तथा स्टेलेरियम सॉफ्टवेयर का उपयोग कर रामायण के खगोलीय संदर्भों के व्योमचित्र लिये गए। पाठक यह देख कर आनंदित हो सकते हैं कि जब श्रीराम का जन्म हुआ तो पाँच ग्रहों को अपने उच्च स्थान में दर्शाते हुए आकाश किस प्रकार सुन्दर दिखाई दे रहा था और जब अशोक वाटिका में रावण सीता को धमका रहा था तो ग्रहण से ग्रसित चंद्रमा लंका के आकाश में उदित हुआ। इस प्रकार इस पुस्तक में महर्षि वाल्मीकि द्वारा रचित श्रीराम की मूल जीवन गाथा में दिए गए घटनाक्रम का वर्णन करते हुए, उनके बहुआयामी

वैज्ञानिक तिथि करण के प्रमाणों को इस प्रकार समाहित कर दिया गया है कि वे राम चरितावली में अंतर्निहित हो गए हैं। पुरातत्व विज्ञान, पुरावनस्पति विज्ञान, भू–विज्ञान तथा समुद्र विज्ञान, रिमोट सेंसिग और अनुवांशिक अध्ययन भी रामायण के इस खगोलीय काल–निर्धारण की पुष्टि करते हैं। पुराने ताँबे के वाणाग्र, सोने चाँदी के आभूषण, पत्थरों व मोतियों के गहने, टेराकोटा के बर्तन तथा विभिन्न प्रकार के पेड़, पौधों व फसलों के चित्र भी इस पुस्तक में उद्धृत हैं। क्या श्रीराम का जन्म अयोध्या में ही हुआ था? और क्या उन्होंने सज्जन पुरूषों की अत्याचारों से रक्षा हेतु लंका तक की सचमुच ही यात्रा की थी? क्या उन्होंने एक आदर्श पुत्र, एक आदर्श भाई तथा आदर्श समाज सुधारक के रूप में अतुलनीय उदाहरण पेश किये? इन प्रश्नों के विश्वसनीय उत्तर इस पुस्तक में अवश्य मिलेंगे। इस पुस्तक में तीन अनुलग्नक हैं– (1) दृष्टिगोचर ग्रहों, नक्षत्रों तथा खगोलीय विन्यासों की आधारभूत अवधारणाय (2) रामायण में दिए गए खगोलीय संदर्भों की क्रमिक खगोलीय तथा ऐतिहासिक तिथियों की सूचीय (3) युगों की अवधारणा व्याख्या एवं स्पष्टीकरण। इनको पढ़ने के पश्चात् पाठकों को इस पुस्तक में दिये आकाशीय दृश्यों को समझना आसान हो जाएगा और यह भी आभास हो जाएगा कि यदि हम युगों की अवधारणा का सही अर्थ निकालते हैं तो इस पुस्तक में दी गई तिथियाँ हमारे पारम्परिक विश्वास के अनुसार ही हैं।

महाराजा विक्रमादित्य शोध पीठ, स्वराज संस्थान संचालनालय, संस्कृति विभाग, मध्यप्रदेश शासन के लिए 1, उदयन मार्ग, उज्जैन-456010 से प्रसारित. सम्पादक : श्रीराम तिवारी, समन्वयक : राजेश्वर त्रिवेदी.

आलेख सेवा निःशुल्क वितरण के लिए. फोन: 0734-2521499, 0755-2660407 Email:mvspujjain@gmail.com, vikramadityashodhpeeth@gmail.com